The Banyan Tree Journal
(An Open Access Peer-reviewed Multidisciplinary Journal)

ISSN:
No. 1, June 2025 : 53-57

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में प्रतिपादित यम का आधुनिक विश्लेषण

डॉ. सन्तोष कुमार मिश्र *

सारांश

यह शोध-निबंध महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के प्रथम अङ्ग 'यम' की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक व्याख्या करता है। वैदिक परंपरा में प्रतिष्ठित योग-दर्शन मात्र एक साधना पद्धति न होकर जीवनशैली, नैतिक अनुशासन तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग है। यम के पाँच तत्व—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—मनुष्य के चित्त की शुद्धि का आधार हैं, जो योगिक अनुशासन के लिए अनिवार्य माने गए हैं। इस अध्ययन में यम को केवल नैतिक नियमों की श्रृंखला न मानते हुए, आधुनिक समाज की मानसिक, सामाजिक और नैतिक समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हिंसा, असत्य, भोगलिप्सा, भ्रष्टाचार, और भौतिक संग्रह की प्रवृत्तियों से ग्रस्त आज के युग में पतंजलि का यम सिद्धांत एक सार्वभौमिक आचार संहिता के रूप में प्रासंगिक है। यह व्यक्ति को आत्म-नियंत्रण, संतुलित आचरण तथा व्यापक सामाजिक समरसता की ओर उन्मुख करता है। यम के अभ्यास से न केवल आन्तरिक आत्मबल की प्राप्ति होती है, बल्कि यह समग्र मानवता को शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की दिशा में प्रेरित करता है। अतः यह स्पष्ट है कि योग का यह प्रारम्भिक चरण आज के जटिल वैश्विक संदर्भ में भी उतना ही सामयिक, प्रभावशाली और आवश्यक है, जितना प्राचीन काल में था।

(Keywords): अष्टांग योग, यम, पतंजलि, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, आधुनिक समाज, चित्तशुद्धि, नैतिक अनुशासन, योगदर्शन

वैदिककाल से सतत प्रवहमान भारतीय मनीषा के पड़ाव में योग-दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान समूचे विश्व में किसी से छिपा नहीं है। योग महज दर्शन नहीं है, प्रत्युत एक प्राकृतिक जीवन शैली है, विज्ञान है, धर्म है, मनुष्यत्व की असली परिभाषा है। वस्तुतः समस्त दर्शन-ग्रन्थ दुःख-निवृत्ति के मूल में विकसित हुए हैं। दर्शन-ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य आत्म तत्व (मोक्ष-प्राप्ति) का साक्षात्कार है, किन्तु यह दर्शन सैद्धान्तिक कम व्यवहारिक अधिक है। इसका प्रभाव लोक में स्पष्ट देखा जा सकता है। निश्चय ही 'योग' भारतीय संस्कृति का प्राण है। योग के माध्यम से व्यक्ति अलौकिक शक्तियों को जागृत कर सकता है। योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि माने गये हैं, किन्तु पतंजलि से पूर्व योग का ज्ञान कई स्तरों पर विकसित हो चुका था।[1] वास्तव में पतंजलि के योग का दार्शनिक आधार सांख्य दर्शन ही है।[2] योग की परिभाषा देते हुए महर्षि ने कहा- 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।'[3] चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् 'समाधान' योग कहलाता है। सामान्यतः अन्तःकरण को ही चित्त की संज्ञा दी गयी है। सात्विक् आदि चित्त की वृत्तियों का निरोध दो प्रकार से संभव है- अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा।[4] 'योग' शब्द मुख्यतः दो प्रकार से सिद्ध किया जाता है- पहला 'युजिर योगे' धातु से निष्पन्न शब्द, जिसका अर्थ 'जोड़' है तथा दूसरा 'युज् समाधौ' धातु से बना हुआ 'योग' शब्द, जिसका अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध किया है। लौकिक तथा पारलौकिक विषयों के प्रति प्रवृत्ति को वैराग्य के द्वारा रोका जाता है तथा अभ्यास से चित्त को स्थिर किया जाता है। वास्तव में ये दोनों साधन उत्तम अधिकारी के लिये कहे गये हैं। सामान्य साधकों के लिए महर्षि ने यमनियमादि आठ अङ्गों[5] का निर्देश किया, जिनका अनुष्ठान करने से अविद्या रूपी अविशुद्धि का क्षय होता है, तदुपरान्त यथार्थ ज्ञान का आविर्भाव होता है।[6] "मोक्ष का साधन ज्ञान है। तत्वज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। पुरुष का प्रकृति और उसके विकारों महदादि से विवेक ही ज्ञान है। इसी से त्रिविध दुःख का विनाश होता है।[7]

* प्राचार्य, श्री लाल बहादुर शास्त्री इ.का., चायल, कौशाम्बी। E-mail: skmishra779@gmail.com

यह तो निर्विवाद है कि जब तक आत्मा का शरीर और मन के ऊपर पूरा अधिकार नहीं हो जाता, तब तक उसमें वह शान्ति या निश्चिन्तता नहीं आती, जिससे वह प्रज्ञा की उपलब्धि कर सके। अतः शरीर, मन तथा इन्द्रियों की शुद्धि के लिए आठ प्रकार के साधनों का निर्देश किया गया है।"[8] इन अंगों में प्रथम 'यम' है।

महर्षि पतंजलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को 'यम' कहा है- 'अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।'[9]

अमरकोश में 'यम' की परिभाषा कुछ इस प्रकार की गयी है- 'शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः।'[10] अर्थात् शरीर से जीवन भर करने योग्य जो कर्म है, संयम है, वह 'यम' कहा जाता है। यम मनुष्यों के चित्त की शुद्धि करते हैं।[11] चितवृत्तिनिरोध रूप योग की सिद्धि का यह प्रथम चरण है। यह प्रत्येक मनुष्य (गृहस्थ और ब्रह्मचारी दोनों के लिये) को यावज्जीवन करने योग्य कर्म हैं। श्रीमद्भागवतपुराण में यमों की संख्या 12 मानी गयी है।[12] यम के साथ नियम का भी प्रायः उल्लेख किया जाता है। 'नियम' हेतु-विशेष से समयानुसार करने योग्य कर्म हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार यम और नियम सकाम, निष्काम दोनों प्रकार के साधकों के लिये उपयोगी हैं। जो पुरुष इनका पालन करते हैं, वे यम और नियम उन्हें उनकी इच्छानुसार भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं।[13] कर्म-पञ्चक रूप यम में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है। अहिंसा को परम धर्म की संज्ञा दी गयी है।[14] अहिंसा से बढ़कर कोई सुख नहीं।[15] मन, वचन तथा कर्म से किसी भी प्राणी को कभी क्लेश (दुःख) न पहुँचाना अहिंसा है। "पंचशिख के मत से अहिंसा ही मानव का सर्वाधिक कल्याणकारी तत्त्व है। यही सिद्धान्त आगे चलकर सांख्य दर्शन की आचार संहिता का मूलधार बना।"[16] ''हिंसा का मूलाधार कषाय भाव है। बाहर से भले ही किसी प्राणी की हिंसा न भी हो, पर भीतर यदि कषाय भाव और राग-द्वेष की परिणति चल रही है, तो वह हिंसा है।''[17]

''यज्ञों में अनिवार्य रूप से होने वाली हिंसा भी अधर्मकारिणी है, पापकारिणी है। जिस पाप या अधर्म का दुःखादि फल, चाहे वह यज्ञ से उत्पन्न प्रधान अदृष्ट 'पुण्य' या धर्म के फलभूत सुख के समक्ष कितना भी अकिचिंत्कर या नगण्य क्यों न हो, स्वर्गादि लोकों में भोगना ही पड़ता है।''[18] जो व्यक्ति किसी की हिंसा नहीं करता, वह किसी से भयभीत नहीं होता और न ही उसे कोई भय खाता है। अहिंसा, सत्य आदि से युक्त होना दैवी गुण से सम्पृक्त मनुष्यों का लक्षण माना गया है।[19] सत् शब्द में यत् प्रत्यय जोड़ने से सत्य शब्द निष्पन्न होता है। ऋग्वेद का 'ऋत्' शब्द सत्य का ही पर्याय है। सत्य ही परम तत्त्व है, ब्रह्म है, सत्ता है, यथार्थ है, सत्य के द्वारा ही सत्य की उपलब्धि हो सकती है-

'सत्येन लभ्यः तपसा हि एष
आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।'[20]

सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। इसकी प्रतिष्ठा हृदय में है और हृदय से, ही सत्य को जाना जा सकता है।[21] यम की परिधि में सत्य- जैसा कोई पदार्थ देखा गया, अनुमित किया गया या सुना गया है, ठीक वैसे ही उसके विषय में बोलना या तदनुरूप सोच या विचार रखना है- '**सत्यं यथार्थे** वाङ्मनसे यथादृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनसश्च।"[22] सत्य बात यदि प्राणियों की हानि करने वाली हो, तो वह सत्य नहीं हो सकती, पापरूप ही होगी। अतः भली-भाँति सोच-समझकर प्राणियों के हितकारी सत्य का अनुष्ठान करना चाहिए।

'स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम् तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयमिति।'[23] अर्थात् शास्त्राज्ञा के विरुद्ध दूसरों से द्रव्य का ग्रहण करना 'स्तेय' है। स्तेय (चोरी) का प्रतिषेध रूप जो अस्तेय है, वह वास्तव में इस प्रकार की (चोरी की) इच्छा का भी अभाव रूप है। अर्थात् चोरी की इच्छा मन में भी न आये, यही वास्तविक अस्तेय है। आचार शास्त्र का यह भी एक कठिन व्रत है। वेदादि शास्त्रों में दूसरों के धन का लोभ तक न करने की बात की गयी है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है- 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'।[24] अस्तेय सभी प्रकार के व्यक्तियों के धर्म-साधनों में परिगणित होता रहा है।[25] आपत्तिकाल में भी इच्छापूर्वक दूसरों के द्रव्यों को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

यम के अन्तर्गत चतुर्थ 'तत्त्व' ब्रह्मचर्य है। 'ब्रह्म' का अर्थ वृहद् है तथा 'चर्य' का आचरण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है- वृहद् अथवा श्रेष्ठ आचरण। अर्थात् व्यवस्थित व संतुलित ऐसा आचरण जिसमें मन सहित जननेन्द्रिय पर पूर्ण नियंत्रण हो। ब्रह्मचर्य को कठिन तप कहा गया है। पातंजल योग के अनुसार ब्रह्मचर्य है- 'गुप्तेन्द्रिस्योपस्थस्य संयमः' (व्यासभाष्य 2.30)। अर्थात् उपस्थ (जननेन्द्रिय) नामक गुप्तेन्द्रिय का संयम (निग्रह)। यह संयम केवल मैथुन कर्म तक ही सीमित नहीं, प्रत्युत उस इन्द्रिय को उत्तेजना प्रदान करने वाले स्मरण, सम्भाषण आदि कर्मों पर भी पूरा नियंत्रण होना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से व्यक्ति में बल और ओज की वृद्धि होती है।

'अपरिग्रह' नामक अन्तिम तत्त्व को परिभाषित करते हुए व्यास भाष्य में लिखा गया है- 'विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणम परिग्रहः।'[26] संसार में विषय-भोग की जो वस्तुएँ हैं, उनको अस्वीकार करना ही अपरिग्रह है। सर्वप्रथम इन वस्तुओं का अर्जन कष्टकारी (दोषयुक्त) है। पुनः इनकी रक्षा करना, फिर इनके नष्ट होने का कष्ट, इनमें आसक्त हो जाना भी दुःखदायी और भी ये हिंसा दोष (परपीड़ा) से युक्त हैं। अतः इन विषयों का संग्रह ठीक नहीं है। जीवन-निर्वाह के लिए इन वस्तुओं का जितना कम से कम संग्रह और उपयोग किया जाय, उतना ही ठीक है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग का प्रथम अङ्ग '**यम**' ही इतना महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति के अन्दर दैवी गुण का आधान हो जाता है, पुनः आगे के अंगों का कहना ही क्या? यह प्रथम चरण ही वास्तव में यह सिद्ध कर देता है कि व्यक्ति यौगिक-क्रिया अथवा साधना को सम्यक् रूप से करने में समर्थ हो पायेगा या नहीं। यौगिक यम आचार-मीमांसा का प्रमुख भाग है। हमारे जीवन में स्वानुशासन एवं व्यवहार ज्ञान का विशेष स्थान है। यह व्यक्ति को केवल आन्तरिक रूप से पुष्ट एवं आत्मा के निकट ही नहीं ले जाता, बल्कि वाह्य रूप से उसे इतना सबल बना देता है कि वह अपने उच्चादर्शों से एक ऐसा समाज अथवा विश्व रचता है, जिसमें सर्वत्र सुख-शान्ति, सौहार्द, प्रेम, ईमानदारी, करुणा जैसे तत्त्वों का साम्राज्य रहता है। कहीं भी नकारात्मक भाव नहीं रहते। आधुनिक इस जटिल विश्व में मनुष्यत्व को परिभाषित एवं सम्पादित करना कठिन होता जा रहा है। चारो ओर झूठ एवं हिंसक प्रवृत्तियों का बोलबाला है। समाज राग-द्वेष, ईर्ष्या, कलह, क्षोभ, लोभ से ग्रसित है। शान्ति, सद्भाव, कहीं भी नहीं दिखायी पड़ता। "संकीर्ण रागद्वेष जिस स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति को जन्म देते हैं, वह दुःख और सुख का कारण बनती है और ये फिर राग और द्वेष को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार समान्यतः जीवन का दुश्चक्र चलता रहता है, जिसका कहीं से भी शुरू होना नहीं कहा जा सकता। यम और नियमों में जो अभ्यास विवेक्षित हैं, वह मनुष्य को कुछ कामों को करने से रोककर और उसे कुछ भावात्मक सद्गुणों की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करके इस दुश्चक्र

से नाता तोड़ने और जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले मार्ग का अबाध रूप से अनुसरण करने में सहायता देता है।"[27] वस्तुतः अहिंसा, सत्य आदि केवल नैतिक नियम नहीं हैं, प्रत्युत ये मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक ऐसे माध्यम हैं, जिनके द्वारा संसार में स्थिरत्व प्राप्त होता है; स्वार्थ, दम्भ, जड़ता, हीनता जैसी भावनायें उत्पन्न ही नहीं हो पातीं। सम्पूर्ण विश्व के प्रति स्वस्थ चिन्तन, सब में विश्वास एवं परप्रगति में हर्षातिरेक जैसे भाव परस्पर दूरी को मिटाकर आत्मैक्य स्थिति में ला देते हैं। यही अवस्था इस संसार में सुखपूर्वक जीने तथा परलोक में अमृतत्व की प्राप्ति में सहायक होती है, जो योग-दर्शन का मुख्य उद्देश्य है। ''योग के अनुसार आत्मा की वास्तविकता को मन के वस्तुनिष्ठ उपयोग के द्वारा नहीं, वरन् उसकी क्रियाओं का दमन करके तथा मन की उस निचली सतह में पहुँचकर जो हमारे दैनिक जीवन और क्रिया-कलापों के द्वारा हमारे दैवी स्वरूप को छिपाये रहती हैं, प्राप्त किया जा सकता है।''[28] भगवान् पतञ्जलि की यौगिक क्रियाएँ व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक रूप से दृढ़ करती हुईं उसे प्राणिमात्र के प्रति उदार एवं सम बनाती हैं। अष्टाङ्ग योग का यम जाति, देश, काल, और समय की सीमा में न बँधकर सार्वभौमिक व सार्वकालिक कहे गये हैं। इन्हें महाव्रत की संज्ञा दी गयी है।[29] इनकी सत्ता सदैव अक्षुण्ण है। इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि का योग इस सृष्टि के कल्याणार्थ महाविज्ञान है। ठीक ही कहा गया है-

'योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योग: प्रवर्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित्।।'[30]

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1- याज्ञवल्क्य के कथनानुसार हिरण्यगर्भ योग के वक्ता हैं। पतञ्जलि ने योग का केवल अनुशासन किया अर्थात् प्रतिपादित शास्त्र का उपदेश मात्र दिया। अतः वे योग के प्रवर्तक न होकर प्रचारक या संशोधक मात्र हैं। - 'भारतीय दर्शन' डॉ. बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 1980, पृष्ठ 350

2- 'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।' –श्रीमद्भगवद्गीता - 5.5

3- 'पातंजलयोगदर्शनम्'- 1.2

4- 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः'- वही, 1.12

5- 'यमनियमाऽऽसनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि' - वही, 2.29

6- 'योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः' -वही, 2.28

7- 'भारतीय दर्शन' - पारसनाथ द्विवेदी, मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1980, पृष्ठ 221

8- 'भारतीय दर्शन' - डॉ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 1960, पृष्ठ 363

9- 'पातंजलयोगदर्शनम्' - 2.30

10- 'अमरकोश'- 2.7.48

11- 'यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताः चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्।' - कूर्मपुराण 2.11.13

12- 'अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः।
'आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं माभयम्।।' - श्रीमद्भागवतपुराण- 11.33

13- 'पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि' - वही - 11.35

14- 'अहिंसा परमो धर्मः' - महाभारत, अनुशासन पर्व-116.25

15- 'अहिंसायाः परो धर्मः नास्त्यहिंसा परं सुखम्' कूर्म पुराण -2.11.15

16- 'भारतीय मनीषा' - प्रो0 आद्या प्रसाद मिश्र, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, विक्रम संवत् 2063, पृ0 200

17- ‘पुरुषार्थ सिद्धयुपाय’, उद्‌धृत ‘अहिंसा की बोलती मीनारें', गणेश मुनि शास्त्री, सन्मति ज्ञानपीठ प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण, 1968 पृष्ठ 11

18- 'भारतीय मनीषा' - प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, विक्रम संवत 2063, पृष्ठ 200

19- 'श्रीमद्भगवद्गीता' - 16, 1-3

20- ‘मुण्डकोपनिषद्' - 3.1.5

21- ‘सत्यं प्रतिष्ठितमिति हृदय इति होवाच हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं प्रतिष्ठितं भवति इति'- बृहदारण्यकोपनिषद्-3.9.27

22- 'पातंजलयोगदर्शनम्'-2.30 (व्यास भाष्य)।

23- वही, 2.30 (व्यासभाष्य)।

24- 'ईशोपनिषद्'-1

25- 'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषाः धर्मसाधनम्।।' - 'याज्ञयवल्क्यस्मृतिः'-1.122

26- 'पातंजलयोगदर्शनम्'- 2.30 (व्यास भाष्य)।

27- ‘भारतीय दर्शन की रूपरेखा’- एम0 हिरियन्ना, हिन्दी अनुवादक डॉ0 गोवर्धन भट्ट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1983, पृष्ठ 262

28- इण्डियन फिलासफी’- राधाकृष्णन, उद्‌धृत- 'भारतीय चिन्तन परम्परा'- के दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा0 लि0), नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1982, पृष्ठ 181

29- ‘जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्' - ‘पातञ्जल- योगदर्शनम्' - 2.31

30- ‘कूर्मपुराण’(2.2.41)